International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 29-05-2022, Accepted: 14-06-2022, Published: 30-06-202
Volume 8, Issue 3, 2022, Page No. 127-128

लौकिक मूर्ति कला का ऐतिहासिक अध्ययन

भाग्यश्री लोदेतिया[1], धीरेन्द्र सोलंकी[2]
[1] शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मध्य प्रदेश, भारत
[2] शोध निर्देशक, उपाचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश

प्राचीन भारत में लौकिक मूर्तिकला भाब्द का प्रयोग वैदिक युग से ही होता चला आ रहा है। ऋग्वेद में यज्ञ के सम्बन्ध में लौकिक मूर्ति भाब्द का प्रयोग मिलता है।[1] लौकिक मूर्ति के लिए अर्च्चा भाब्द का भी प्रयोग ऋग्वेद किया गया है।[2] महर्षि पतंजलि ने भी लौकिक मूर्ति के लिए अर्च्चा भाब्द का प्रयोग करते है।[3] लौकिक मूर्ति का प्रयोग वस्तुतः उन्हीं मूर्तियों के लिए किया गया है, जो किसी न किसी धर्म अथवा दर्शन से सम्बन्ध रखती है। इन मूर्तियों को और लौकिक मूर्ति में जो मौलिक अंतर पाया जाता है। वह मूर्ति सामान्य दुनियावी मनुष्यों या प्राणियों की आकृतियों के समान होती हुई पाई जाती है। यहाँ तक लौकिक मूर्ति भाब्द का प्रयोग देवताओं, देवियों महात्माओं या स्वर्गवासी पूर्वजों के लिए भी प्रयोग किया गया है। इन आकृतियों के लिए विशेष रूप से लौकिक मूर्ति कला का समन्वय स्थापित किया गया है। मूर्ति–निर्माण और लौकिक मूर्ति–निर्माण की प्रक्रिया से कलाकार की शिल्पगत अभिव्यक्ति को दो रूपों में विभाजित किया गया है। यहाँ तक लौकिक मूर्ति–निर्माण के लिए निश्चित नियमों और लक्षणों का विधान माना जाता है। इसके फलस्वरूप कलाकार लौकिक मूर्ति निर्माण के पूर्व स्वतंत्र नहीं होता है। यहाँ तक उसके आन्तरिक कला–बोध की अभिव्यक्तिकरण भी उसमें पूर्ण–रूपेण सम्भव नहीं होती है। इसके विपरीत मूर्ति–निर्माण में कलाकार स्वतंत्र कलाकृतियों को निर्मित करता है। यहाँ तक उसकी समस्त शिल्पगत दक्षता उसके गुणों में दिखाई देती है। इन मूर्तियों का सम्बन्ध मूलभूत धार्मिक परम्पराओं पर आधारित होती है। इसका मूल कारण मुख्य रूप से लौकिक मूर्ति का स्वरूप प्रतीकात्मक भी हो सकता है, किन्तु मूर्ति का एक निश्चित आकार और प्रकार का होना असंभव होता है। उदाहरण के रूप में रेलवे लाइन के किनारे खड़े हुए पेड़ को पाशाण–खण्ड को मूर्ति की संज्ञा देना सम्भव नहीं होता है किन्तु मन्दिर में रख देने पर उसे लौकिक मूर्ति या (शिवलिंग) की संज्ञा देना आवश्यक हो जाता है।

मूल शब्दः लौकिक मूर्ति कला, महर्षि पतंजलि, शिवलिंग

प्रस्तावना

शोध प्रविधि

लौकिक मूर्ति कला का ऐतिहासिक अध्ययन नामक शोधपत्र को प्राथमिक और द्वितीयक शोध सामाग्री के आधार पर अध्ययन किया गया है। इसके लिए विद्वानों का मार्गदर्शन, पत्र–पत्रिकाओं, दैनिक समाचार पत्रों आदि को सन्दर्भित करने का प्रयास किया गया है। यह शोध पत्र लौकिक मूर्ति कला की विशेषताओं को प्रदर्शित करता है।

समस्या

लौकिक मूर्ति कला का ऐतिहासिक अध्ययन की मूलभूत समस्याएँ यह रही है कि प्राचीन परम्परा आज विलुप्त के कगार पर जा रही है। यदि इन मूर्ति कलाओं को संजोये रखने का प्रयास नहीं किया गया तो प्रायः समाप्त हो जायेगी। इससे भारतीय समाज में आने वाली नई पीढ़ी इन ज्ञान परम्पराओं से वंचित हो जायेगी। सबसे बड़ी बात यहीं रही है कि समय और समाज की मॉग ने इन परम्पराओं को पीछे छोड़ दिया है। इन्हें सुरक्षित रखने की समस्याएँ है। उनके मूल स्वरूप को नष्ट होने की समस्या है। प्राचीन मूर्तियों के आधार पर विभिन्न विविधताओं को स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

उद्देश्य

लौकिक मूर्तिकला ऐतिहासिक परम्पराओं को उजागर करती है। इससे इतिहास की दृष्टि से समाज में आने वाली नवीन पीढ़ी की विभिन्न परम्पराओं को आकर्षण का केन्द्र होती है। प्राचीन काल की

समाधान

भारतीय ऐतिहासिक परम्परा में लौकिक मूर्ति–निर्माण की परम्परा बहुत ही पुरानी और प्राचीन है। इसका प्रमाण सैन्धव–सभ्यता के अवशेषों में मिट्टी की बनी हुई अनेक नारी–मूर्तियाँ से भी लगाया जा सकता है। यहाँ तक सामान्य दुनियावी मूर्तियों से कुछ भिन्न प्रतीत होती है। इन मूर्तियों से ऐसा प्रतीत होता है कि इसके द्वारा किसी देवी का अंकन अभीष्ट रूप से किया गया है। यहाँ तक मन्दिरों की नक्कशी आदि में नायक–नायिका के लौकिक मूर्तियों का अंकन मिलता है। पेड़–पौधों में गोपियों की तरह नाच–गान या खेल आदि का भी चित्रांकन मिलता है। मोहन–जोदड़ों से प्रस्तर–निर्मित मुलायम पत्थर की एक पुरूश–मूर्ति प्राप्त हुई है, जिसमें कायभाग के साथ मस्तक सुरक्षित अवस्था में

दिखाई देता है।[4] इस प्रकार से पुरूश आकृति के मुखपर दाढ़ी है। उसके कंधे में उतरीय ओढे हुए है जिनपर तिफुलियाँ अलंकरण को भी प्रदर्शित करती है। इसके बाल के बीच में भली–भाँति सँवारकर एक फीते से बँधा हुआ है। मूर्ति के नेत्र लम्बे, कम चौड़े और अधमुँदे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर स्थित है।[5] इस मूर्ति के उत्तरीय पर जिस प्रकार की तिफुलियाँ आकृति खींची हुई प्रतीत होती है। वैसी आकृति का प्रचार मिस्र, कीट, मेसोपोटामिया आदि में भी था, जहाँ उसका सम्बना देवमूर्तियों के साथ था। इस समीकरण के आधार पर स्पश्ट होता है कि यह मूर्ति निश्चित ही किसी न किसी धर्म से ही सम्बन्धित होगी। इस प्रकार यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि लौकिक मूर्ति निर्माण का आरम्भ भारत की प्राचीनतम सभ्यता सैन्धव–सभ्यता से होता है।

सैन्धव–सभ्यता के पश्चात् प्राचीन भारत की वैदिक सभ्यता में मूर्ति और लौकिक मूर्तिकलाओं के उदाहरण नहीं प्राप्त होते है। यह एक आश्चर्य की बात कही जा सकती है कि सैन्धव सभ्यता के विकासकाल में ही लौकिक मूर्तिकला का निर्माण के विकास को आत्यधिक सीमा तक हुआ और उसके पश्चात् उसके विकास में एक अवरोध हो प्रतीत होने लगा।

निष्कर्ष

मौर्य–युग में कला की अभूतपूर्व उन्नति हुई, इस प्रकार यह प्रश्न बहुत ही स्वाभाविक है कि सिन्धु–घाटी की सभ्यता और मौर्य–युग के मध्य यह दो हजार वर्शों में भारतीय शिल्प–कला और लौकिक मूर्ति–निर्माण का इतिहास कला कृतियों से पल्लवित है। यहाँ तक भारतीय कला के इतिहास में जो यह अन्धकार दिखाई देता है। वह वस्तुतः भारतीय कला की अवरूद्धता या अभाव नहीं कहा जा सकता है। अर्थात् भारतीय कला एवं साहित्य का अन्धकार युग अभी खोज की अपेक्षा से परिपूरित होता है। इस प्रकार से 40–50 वर्षों के अन्दर ही हमें सिन्धु–घाटी की सभ्यता की जानकारी प्राप्त होती है। इसे ही निकट भविष्य में इस दो हजार वर्षीय कला के अन्धकार युग की कहानी को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. ऋग्वेद 10, 130, 3
2. नु मन्वानः एशां देवान् अर्च्या, ऋग्वेद 78, 9, 19
3. महाभाश्य, पृ. 45
4. Marshall, Mohenjodaro and Indus Civilization, I, 44.
5. डॉ. राधाकान्त वर्मा, भारतीय प्रागितिहास, परम ज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद 2007, पृष्ठ 86–89